[१]

अथ गर्भाधानविधिं वक्ष्यामः

निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः ।

—मनुस्मृति–द्वितीयाध्याये, श्लोकः १६ ।।

अर्थ—मनुष्यों के शरीर और आत्मा के उत्तम होने के लिये निषेक अर्थात् गर्भाधान से लेके श्मशानान्त अर्थात् अन्त्येष्टि=मृत्यु के पश्चात् मृतक शरीर का विधिपूर्वक दाह करने पर्यन्त **१६ संस्कार** होते हैं ।

शरीर का आरम्भ गर्भाधान और शरीर का अन्त भस्म कर देने तक सोलह प्रकार के **उत्तम संस्कार** करने होते हैं । उनमें से प्रथम गर्भाधान–संस्कार है ।

गर्भाधान उस को कहते हैं कि जो **''गर्भस्याऽऽधानं वीर्यस्थापनं स्थिरीकरणं यस्मिन् येन वा कर्मणा, तद् गर्भाधानम् ।''** गर्भ का धारण, अर्थात् वीर्य का स्थापन गर्भाशय में स्थिर करना जिस से होता है । उसी को गर्भाधान संस्कार कहते हैं ।

जैसे बीज और क्षेत्र के उत्तम होने से अन्नादि पदार्थ भी उत्तम होते हैं । वैसे उत्तम, बलवान् स्त्री–पुरुषों से सन्तान भी उत्तम होते हैं। इस से पूर्ण युवावस्था यथावत् ब्रह्मचर्य का पालन और विद्याभ्यास करके, अर्थात् न्यून से न्यून १६ वर्ष की कन्या और २५ पच्चीस वर्ष का पुरुष अवश्य हो और इस से अधिक वयवाले होने से अधिक उत्तमता होती है, क्योंकि विना सोलहवें वर्ष के गर्भाशय में बालक के शरीर को यथावत् बढ़ने के लिये अवकाश और गर्भ के धारण–पोषण का सामर्थ्य कभी नहीं होता और २५ पच्चीस वर्ष के विना पुरुष का वीर्य भी उत्तम नहीं होता । इस में यह प्रमाण है—

पञ्चविंशे ततो वर्षे पुमान् नारी तु षोडशे ।
समत्वागतवीर्यौ तौ जानीयात् कुशलो भिषक् ।।१।।

—सुश्रुते सूत्रस्थाने, अ० ३५।१०।।

ऊनषोडशवर्षायाम् अप्राप्तः पञ्चविंशतिम् ।
यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते ।।२।।
जातो वा न चिरं जीवेज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः ।
तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत् ।।३।।

—सुश्रुते सूत्रस्थाने, अ० १०।४७–४८।।

ये सुश्रुत के श्लोक हैं । शरीर की उन्नति वा अवनति का विधि जैसा वैद्यकशास्त्र में है, वैसा अन्यत्र नहीं । उसका मूल विधान आगे वेदारम्भ में लिखा जायेगा, अर्थात् किस-किस वर्ष में कौन-कौन धातु किस-किस प्रकार का कच्चा वा पक्का, वृद्धि वा क्षय को प्राप्त होता है, यह सब वैद्यकशास्त्र में विधान है, इसलिए गर्भाधानादि संस्कारों के करने में वैद्यकशास्त्र का आश्रय विशेष लेना चाहिये ।

अब देखिये सुश्रुतकार परम वैद्य कि जिन का प्रमाण सब विद्वान् लोग मानते हैं, वे विवाह और गर्भाधान का समय न्यून से न्यून १६ सोलह वर्ष की कन्या और २५ पच्चीस वर्ष का पुरुष अवश्य होवे, यह लिखते हैं ।

जितना सामर्थ्य २५ पच्चीसवें वर्ष में पुरुष के शरीर में होता है उतना ही सामर्थ्य १६ सोलहवें वर्ष में कन्या के शरीर में हो जाता है। इसलिए वैद्य लोग पूर्वोक्त अवस्था में दोनों को समवीर्य अर्थात् तुल्य सामर्थ्यवाले जानें ।।१।।

सोलह वर्ष से न्यून अवस्था की स्त्री में २५ पच्चीस वर्ष से कम अवस्था का पुरुष यदि गर्भाधान करता है, तो वह गर्भ उदर में ही बिगड़ जाता है ।।२।।

और जो उत्पन्न भी हो तो अधिक नहीं जीवे, अथवा कदाचित् जीवे भी तो उसके अत्यन्त दुर्बल शरीर और इन्द्रिय हों । इसलिये अत्यन्त बाला अर्थात् सोलह वर्ष की अवस्था से कम अवस्था की स्त्री में कभी गर्भाधान नहीं करना चाहिए ।।३।।

चतस्त्रोऽवस्थाः शरीरस्य वृद्धिर्यौवनं सम्पूर्णता किञ्चित्परि-हाणिश्चेति । आषोडशाद् वृद्धिराचतुर्विंशतेर्यौवनमाचत्वारिंशतः सम्पूर्णता ततः किञ्चित्परिहाणिश्चेति ॥

अर्थ—सोलहवें वर्ष से आगे मनुष्य के शरीर के सब धातुओं की वृद्धि और पच्चीसवें वर्ष से युवावस्था का आरम्भ, चालीसवें वर्ष में युवावस्था की पूर्णता अर्थात् सब धातुओं की पूर्ण पुष्टि, और उस से आगे किञ्चित्-किञ्चित् धातु वीर्य की हानि होती है, अर्थात् ४० चालीसवें वर्ष सब अवयव पूर्ण हो जाते हैं । पुनः खान-पान से जो उत्पन्न वीर्य धातु होता है, वह कुछ-कुछ क्षीण होने लगता है ।

इस से यह सिद्ध होता है कि यदि शीघ्र विवाह करना चाहें तो कन्या १६ वर्ष की और पुरुष २५ पच्चीस वर्ष का अवश्य होना चाहिये। मध्यम समय कन्या का २० वर्ष पर्यन्त और पुरुष का ४० चालीसवां

वर्ष, और उत्तम समय कन्या का २४ चौबीस वर्ष और पुरुष का ४८ अड़तालीस वर्ष पर्यन्त का है ।

जो अपने कुल की उत्तमता, उत्तम सन्तान, दीर्घायु, सुशील, बुद्धिबल पराक्रमयुक्त, विद्वान् और श्रीमान् करना चाहें, वे १६ सोलहवें वर्ष से पूर्व कन्या और २५ पच्चीसवें वर्ष से पूर्व पुत्र का विवाह कभी न करें । यही सब सुधार का सुधार, सब सौभाग्यों का सौभाग्य, और सब उन्नतियों की उन्नति करनेवाला कर्म है कि इस अवस्था में ब्रह्मचर्य रखके अपने सन्तानों को विद्या और सुशिक्षा ग्रहण करावें कि जिस से उत्तम सन्तान होवें ।

ऋतुदान का काल

ऋतुकालाभिगामी स्यात् स्वदारनिरतस्सदा ।
पर्ववर्जं व्रजेच्चैनां तद्व्रतो रतिकाम्यया ॥१॥
ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडश स्मृताः ।
चतुर्भिरितरैः सार्द्धमहोभिः सद्विगर्हितैः ॥२॥
तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशी च या ।
त्रयोदशी च शेषास्तु प्रशस्ता दश रात्रयः ॥३॥
युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु ।
तस्माद्युग्मासु पुत्रार्थी संविशेदार्त्तवे स्त्रियम् ॥४॥
पुमान् पुंसोऽधिके शुक्रे स्त्री भवत्यधिके स्त्रियाः ।
समे पुमान् पुंस्त्रियौ वा क्षीणेऽल्पे च विपर्ययः ॥५॥
निन्द्यास्वष्टासु चान्यासु स्त्रियो रात्रिषु वर्जयन् ।
ब्रह्मचार्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन् ॥६॥

—मनुस्मृतौ अ० ३ ॥

अर्थ—मनु आदि महर्षियों ने ऋतुदान के समय का निश्चय इस प्रकार से किया है कि—

सदा पुरुष ऋतुकाल में स्त्री का समागम करे, और अपनी स्त्री के विना दूसरी स्त्री का सर्वदा त्याग रखे । वैसे स्त्री भी अपने विवाहित पुरुष को छोड़ के अन्य पुरुषों से सदैव पृथक् रहे । जो स्त्रीव्रत अर्थात् अपनी विवाहित स्त्री ही से प्रसन्न रहता है, जैसे कि पतिव्रता स्त्री अपने विवाहित पुरुष को छोड़ दूसरे पुरुष का संग कभी नहीं करती, वह पुरुष जब ऋतुदान देना हो, तब पर्व अर्थात् जो उन ऋतुदान के १६ सोलह दिनों में—**पौर्णमासी, अमावस्या, चतुर्दशी** वा **अष्टमी** आवे, उस को छोड़ देवे । इन में स्त्री-पुरुष रतिक्रिया कभी न करें ॥१॥

स्त्रियों का स्वाभाविक ऋतुकाल १६ सोलह रात्रि का है, अर्थात् रजोदर्शन दिन से लेके १६ सोलहवें दिन तक ऋतुसमय है । उनमें से प्रथम की चार रात्रि अर्थात् जिस दिन रजस्वला हो उस दिन से लेके चार दिन निन्दित हैं । प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ रात्रि में पुरुष स्त्री का स्पर्श और स्त्री पुरुष का सम्बन्ध कभी न करे । अर्थात् **उस रजस्वला के हाथ का छुआ पानी भी न पीवे । न वह स्त्री कुछ काम करे, किन्तु एकान्त में बैठी रहे ।** क्योंकि इन चार रात्रियों में समागम करना व्यर्थ और महारोगकारक है । रजः अर्थात् स्त्री के शरीर से एक प्रकार का विकृत उष्ण रुधिर, जैसा कि फोड़े में से पीव वा रुधिर निकलता है, वैसा है ।।२।।

और जैसे प्रथम की चार रात्रि ऋतुदान देने में निन्दित हैं, वैसे **ग्यारहवीं और तेरहवीं रात्रि भी निन्दित हैं ।** और बाकी रहीं दश रात्रि, सो ऋतुदान देने में श्रेष्ठ हैं ।।३।।

जिन को पुत्र की इच्छा हो, वे **छठी आठवीं दशवीं बारहवीं चौदहवीं और सोलहवीं ये छः रात्रि ऋतुदान में उत्तम जानें, परन्तु इनमें भी उत्तर-उत्तर श्रेष्ठ हैं ।** और जिनको कन्या की इच्छा हो, वे पांचवीं सातवीं नववीं और पन्द्रहवीं ये चार रात्रि उत्तम समझें* । **इससे पुत्रार्थी युग्म रात्रियों में ऋतुदान देवे** ।।४।।

पुरुष के अधिक वीर्य होने से पुत्र और स्त्री के आर्त्तव अधिक होने से कन्या, तुल्य होने से नपुंसक पुरुष वा बन्ध्या स्त्री, क्षीण और अल्पवीर्य से गर्भ का न रहना वा रहकर गिर जाना होता है ।।५।।

जो पूर्व निन्दित ८ आठ रात्रि कह आये हैं, उन में जो स्त्री का संग छोड़ देता है, वह गृहाश्रम में वसता हुआ भी ब्रह्मचारी ही कहाता है ।।६।।

उपनिषदि गर्भलम्भनम् ॥

—यह आश्वलायनगृह्यसूत्र का वचन है ।।

जैसा उपनिषद् में गर्भस्थापन-विधि लिखा है, वैसा करना चाहिए, अर्थात् पूर्वोक्त समय विवाह करके जैसा कि १६ सोलहवें और २५ पच्चीसवें वर्ष विवाह करके ऋतुदान लिखा है, वही उपनिषत् का विधान है ।

अथ गर्भाधानꣳ स्त्रियाः पुष्पवत्याश्चतुरहादूर्ध्वꣳ स्नात्वा विरुजायास्तस्मिन्नेव दिवा आदित्यं गर्भमिति ॥

—यह पारस्करगृह्यसूत्र का वचन है ।।

ऐसा ही गोभिलीय और शौनकगृह्यसूत्रों में भी विधान है ।

---

* रात्रिगणना इसलिए की है कि दिन में ऋतुदान का निषेध है ।

इसके अनन्तर स्त्री जब रजस्वला होकर **चौथे दिन के उपरान्त पांचवें दिन स्नान कर रज-रोगरहित हो,** उसी दिन **(आदित्यं गर्भमिति)** इत्यादि मन्त्रों से जैसा जिस रात्रि में गर्भस्थापन करने की इच्छा हो, उससे पूर्व दिन में सुगन्धादि पदार्थों सहित **पूर्व सामान्यप्रकरण के लिखित प्रमाणे हवन करके निम्नलिखित मन्त्रों से आहुति देनी। यहां पत्नी पति के वाम-भाग में बैठे, और पति वेदी के पश्चिमाभिमुख पूर्व-दक्षिण वा उत्तर दिशा में यथाभीष्ट मुख करके बैठे, और ऋत्विज भी चारों दिशाओं में यथामुख बैठें—**

ओम् अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पापी लक्ष्मीस्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा ॥ इदमग्नये इदन्न मम ॥१॥

ओं वायो प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पापी लक्ष्मीस्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा ॥ इदं वायवे इदन्न मम ॥२॥

ओं चन्द्र प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पापी लक्ष्मीस्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा ॥ इदं चन्द्राय इदन्न मम ॥३॥

ओं सूर्य प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पापी लक्ष्मीस्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा ॥ इदं सूर्याय इदन्न मम ॥४॥

ओम् अग्निवायुचन्द्रसूर्याः प्रायश्चित्तयो यूयं देवानां प्रायश्चित्तयः स्थ ब्राह्मणो वो नाथकाम उपधावामि यास्याः पापी लक्ष्मीस्तनूस्तामस्या अपहत स्वाहा ॥ इदमग्निवायुचन्द्रसूर्येभ्यः इदन्न मम ॥५॥

ओम् अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पतिघ्नी तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा॥ इदमग्नये इदन्न मम ॥६॥

ओं वायो प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पतिघ्नी तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा॥ इदं वायवे इदन्न मम ॥७॥

ओं चन्द्र प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पतिघ्नी तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा॥ इदं चन्द्राय इदन्न मम ॥८॥

ओं सूर्य प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्याः पतिघ्नी तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा॥ इदं सूर्याय इदन्न मम ॥९॥

ओम् अग्निवायुचन्द्रसूर्याः प्रायश्चित्तयो यूयं देवानां प्रायश्चित्तयः स्थ ब्राह्मणो वो नाथकाम उपधावामि यास्याः पतिघ्नी तनूस्तामस्या अपहत स्वाहा ॥ इदमग्निवायुचन्द्रसूर्येभ्यः इदन्न मम ॥१०॥

ओम् अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपुत्र्यास्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा॥ इदमग्नये इदन्न मम ॥११॥

ओं वायो प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपुत्र्यास्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा॥ इदं वायवे इदन्न मम ॥१२॥

ओं चन्द्र प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपुत्र्यास्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा॥ इदं चन्द्राय इदन्न मम ॥१३॥

ओं सूर्य प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपुत्र्यास्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा॥ इदं सूर्याय इदन्न मम ॥१४॥

ओम् अग्निवायुचन्द्रसूर्याः प्रायश्चित्तयो यूयं देवानां प्रायश्चित्तयः स्थ ब्राह्मणो वो नाथकाम उपधावामि यास्या अपुत्र्यास्तनूस्तामस्या अपहत स्वाहा ॥ इदमग्निवायुचन्द्रसूर्येभ्यः इदन्न मम ॥१५॥

ओम् अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपसव्यास्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा॥ इदमग्नये इदन्न मम ॥१६॥

ओं वायो प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपसव्यास्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा॥ इदं वायवे इदन्न मम ॥१७॥

ओं चन्द्र प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपसव्यास्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा॥ इदं चन्द्राय इदन्न मम ॥१८॥

ओं सूर्य प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्राह्मणस्त्वा नाथकाम उपधावामि यास्या अपसव्यास्तनूस्तामस्या अपजहि स्वाहा॥ इदं सूर्याय इदन्न मम ॥१९॥

ओम् अग्निवायुचन्द्रसूर्याः प्रायश्चित्तयो यूयं देवानां प्रायश्चित्तयः स्थ ब्राह्मणो वो नाथकाम उपधावामि यास्या अपसव्यास्तनूस्तामस्या अपहत स्वाहा ॥ इदमग्निवायुचन्द्रसूर्येभ्यः इदन्न मम ॥२०॥

इन बीस मन्त्रों से बीस आहुति देनी* । और बीस आहुति करने से यत्किञ्चित् घृत बचे, वह कांसे के पात्र में ढांक के रख देवे, इसके पश्चात् भात की आहुति देने के लिये यह विधि करना । अर्थात् एक चांदी वा **कांसे के पात्र में भात रखके उसमें घी दूध और शक्कर मिलाके कुछ** थोड़ी देर रखके जब घृत आदि भात में एकरस हो जायें, पश्चात् नीचे लिखे एक-एक मन्त्र से एक-एक आहुति अग्नि में देवे । और स्रुवा में का शेष आगे धरे हुए कांसे के उदकपात्र में छोड़ता जावे–

ओम् अग्नये पवमानाय स्वाहा ॥
इदमग्नये पवमानाय इदन्न मम ॥१॥
ओम् अग्नये पावकाय स्वाहा ॥
इदमग्नये पावकाय इदन्न मम ॥२॥
ओम् अग्नये शुचये स्वाहा ॥
इदमग्नये शुचये इदन्न मम ॥३॥
ओम् अदित्यै स्वाहा ॥ इदमदित्यै इदन्न मम ॥४॥
ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये इदन्न मम ॥५॥

ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम् । अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे । अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्धय स्वाहा ॥
इदमग्नये स्विष्टकृते इदन्न मम ॥६॥

इन छः मन्त्रों से उस भात की आहुति देवें । तत्पश्चात् पूर्व सामान्यप्रकरणोक्त २२-२३ पृष्ठलिखित आठ मन्त्रों से **अष्टाज्याहुति**

* ये बीस आहुति देते समय वधू अपने दक्षिण हाथ से वर के दक्षिण स्कन्ध पर स्पर्श कर रक्खे ।

देनी । उन ८ आठ मन्त्रों से ८ आठ तथा निम्नलिखित मन्त्रों से भी आज्याहुति देवें—

विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु ।
आ सिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते स्वाहा ॥१॥
गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति ।
गर्भं ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजा स्वाहा ॥२॥
हिरण्ययी अरणी यं निर्मन्थतो अश्विना ।
तं ते गर्भं हवामहे दशमे मासि सूतवे स्वाहा ॥३॥

—ऋ० मं० १० । सू० १८४॥

रेतो मूत्रं वि जहाति योनिं प्रविशदिन्द्रियम् । गर्भो जरायुणावृतऽ उल्वं जहाति जन्मना । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धसऽ-इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु स्वाहा ॥४॥

यत्ते सुसीमे हृदयं दिवि चन्द्रमसि श्रितम् । वेदाहं तन्मां तद्विद्यात् ॥ पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् स्वाहा ॥५॥ —यजुर्वेदे ॥

यथेयं पृथिवी मही भूतानां गर्भमादधे ।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे स्वाहा ॥६॥
यथेयं पृथिवी मही दाधारेमान् वनस्पतीन् ।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे स्वाहा ॥७॥
यथेयं पृथिवी मही दाधार पर्वतान् गिरीन् ।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे स्वाहा ॥८॥
यथेयं पृथिवी मही दाधार विष्ठितं जगत् ।
एवा ते ध्रियतां गर्भो अनु सूतुं सवितवे स्वाहा ॥९॥

—अथर्व० कां० ६। सू० १७ ॥

इन ९ मन्त्रों से नव **आज्य** और मोहनभोग की आहुति देके, नीचे लिखे मन्त्रों से भी **चार घृताहुति** देवें—

ओं भूरग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये इदन्न मम ॥१॥
ओं भुवर्वायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे इदन्न मम ॥२॥
ओं स्वरादित्याय स्वाहा ॥ इदमादित्याय इदन्न मम ॥३॥

ओम् अग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा । इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः इदन्न मम ॥४॥

पश्चात् नीचे लिखे मन्त्रों से घृत की दो आहुति देनी—

ओम् अयास्यग्नेर्वषट्कृतं यत्कर्मणोऽत्यरीरिचं देवा गातुविदः स्वाहा ॥ इदं देवेभ्यो गातुविद्भ्यः इदन्न मम ॥१॥

ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये इदन्न मम ॥२॥

इन कर्म और आहुतियों के पश्चात् पृष्ठ २१ में लिखे प्रमाणे **(ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं०)** इस मन्त्र से एक स्विष्टकृत् आहुति घृत की देवें ।

जो इन मन्त्रों से आहुति देते समय प्रत्येक आहुति के स्रुवा में शेष रहे घृत को आगे धरे हुए काँसे के उदकपात्र में इकट्ठा करते गए हों, जब आहुति हो चुकें, **तब उन आहुतियों के शेष घृत को वधू लेके स्नानघर में जाकर उस घी का पग के नख से लेके शिरपर्यन्त सब अंगों पर मर्दन करके स्नान करे। तत्पश्चात् शुद्ध वस्त्र से शरीर पोंछ, शुद्ध वस्त्र धारण करके कुण्ड के समीप आवे। तब दोनों वधू-वर कुण्ड की प्रदक्षिणा करके सूर्य का दर्शन करें ।** उस समय—

ओम् आदित्यं गर्भं पयसा समङ्धि सहस्रस्य प्रतिमां विश्वरूपम् । परिवृङ्धि हरसा माभिमंस्थाः शतायुषं कृणुहि चीयमानः ॥१॥

सूर्यो नो दिवस्पातु वातो अन्तरिक्षात् । अग्निर्नः पार्थिवेभ्यः ॥२॥

जोषा सवितर्यस्य ते हरः शतं सवाँ अर्हति । पाहि नो दिद्युतः पतन्त्याः ॥३॥

चक्षुर्नो देवः सविता चक्षुर्न उत पर्वतः । चक्षुर्धाता दधातु नः ॥४

चक्षुर्नो धेहि चक्षुषे चक्षुर्विख्यै तनूभ्यः । सं चेदं वि च पश्येम ॥५

सुसंदृशं त्वा वयं प्रति पश्येम सूर्य । वि पश्येम नृचक्षसः ॥६॥

इन मन्त्रों से परमेश्वर का उपस्थान करके, वधू—

ओम् [१]अमुकगोत्रा शुभदा अमुक[२]दा अहं भो भवन्तमभिवादयामि ।

ऐसा वाक्य बोलके अपने पति को वन्दन अर्थात् नमस्कार करे।

---

१. इस ठिकाने वर के गोत्र अथवा वर के कुल का नामोच्चारण करे।
२. इस ठिकाने वधू अपना नाम उच्चारण करे ।

तत्पश्चात् स्वपति के पिता पितामहादि और जो वहां अन्य माननीय पुरुष तथा पति की माता तथा अन्य कुटुम्बी और सम्बन्धियों की वृद्ध स्त्रियां हों, उन को भी इसी प्रकार वन्दन करे ।

इस प्रमाणे वधू वर के गोत्र की हुए अर्थात् वधू पत्नीत्व और वर पतित्व को प्राप्त हुए, पश्चात् दोनों पति-पत्नी शुभासन पर पूर्वाभिमुख वेदी के पश्चिम भाग में बैठके वामदेव्यगान करें ।

तत्पश्चात् यथोक्त[1] भोजन दोनों जने करें । और पुरोहितादि सब मण्डली को सम्मानार्थ यथाशक्ति भोजन कराके आदर-सत्कारपूर्वक सब को विदा करें ।

---

१. उत्तम सन्तान करने का मुख्य हेतु यथोक्त वधू वर के आहार पर निर्भर है । इसलिये पति-पत्नी अपने शरीर-आत्मा की पुष्टि के लिए बल और बुद्धि आदि की वर्द्धक सर्वौषधि का सेवन करें । सर्वौषधि ये हैं—

दो खण्ड आँबाहलदी, दूसरी खाने की हल्दी, चन्दन, मुरा (यह नाम दक्षिण में प्रसिद्ध है), कुष्ठ, जटामांसी, मोरबेल (यह भी नाम दक्षिण में प्रसिद्ध है), शिलाजित्, कपूर, मुस्ता, भद्रमोथ ।

इन सब ओषधियों का चूर्ण करके, सब समभाग लेके उदुम्बर के काष्ठपात्र में गाय के दूध के साथ मिला उन का दही जमा और उदुम्बर ही के लकड़े की मंथनी से मंथन करके उस में से मक्खन निकाल, उस को ताय, घृत करके उस में सुगन्धित द्रव्य केशर कस्तूरी, जायफल, इलायची, जावित्री मिलाके अर्थात् **सेर-भर दूध में छटांक भर पूर्वोक्त सर्वौषधि मिला सिद्धकर घी हुए** पश्चात् एक सेर में एक रत्ती कस्तूरी और एक मासा केशर और एक-एक मासा जायफलादि भी मिलाके नित्य प्रातःकाल उस घी में से ३२ पृष्ठ में लिखे प्रमाणे आघारावाज्यभागाहुति ४ चार और पृष्ठ ३२ में लिखे हुए (विष्णुर्योनिं०) इत्यादि ७ सात मन्त्रों के अन्त में स्वाहा शब्द का उच्चारण करके जिस रात्रि में गर्भस्थापन क्रिया करनी हो, उसके दिन में होम करके, **उसी घी को दोनों जने खीर अथवा भात के साथ मिलाके यथारुचि भोजन करें ।**

इस प्रकार गर्भस्थापन करें तो सुशील, विद्वान्, दीर्घायु, तेजस्वी, सुदृढ़ और **नीरोग पुत्र उत्पन्न होवे** और **यदि कन्या की इच्छा हो तो जल में चावल पका पूर्वोक्त प्रकार घृत, गूलर के एक पात्र में जमाए हुए दही के साथ भोजन करने से उत्तम गुणयुक्त कन्या भी होवे,** क्योंकि—

''आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः ।''

—यह छान्दोग्य० का वचन है ।

अर्थात् शुद्ध आहार, जो कि मद्यमांसादिरहित घृत, दुग्धादि, चावल, गेहूं आदि के करने से अन्तःकरण की शुद्धि, बल, पुरुषार्थ, आरोग्य और बुद्धि की प्राप्ति होती है । इसलिए पूर्ण युवावस्था में विवाह कर इस प्रकार विधि कर प्रेमपूर्वक गर्भाधान करें तो सन्तान और कुल नित्यप्रति उत्कृष्टता को प्राप्त होते जायें । जब रजस्वला होने के समय में १२-१३ दिन शेष रहें, तब **शुक्ल पक्ष में १२ दिन तक पूर्वोक्त घृत मिलाके इसी खीर का भोजन करके १२ दिन का व्रत भी करें । और मिताहारी होकर**

इसके पश्चात् रात्रि में नियत समय पर जब दोनों का शरीर आरोग्य, अत्यन्त प्रसन्न और दोनों में अत्यन्त प्रेम बढ़ा हो, उस समय गर्भाधान क्रिया करनी । गर्भाधान क्रिया का समय प्रहर रात्रि के गये पश्चात् प्रहर रात्रि रहे तक है । जब वीर्य गर्भाशय में जाने का समय आवे, तब दोनों स्थिरशरीर, प्रसन्नवदन, मुख के सामने मुख, नासिका के सामने नासिकादि, सब सूधा शरीर रखें । वीर्य का प्रक्षेप पुरुष करे । जब वीर्य स्त्री के शरीर में प्राप्त हो, उस समय अपना पायु मूलेन्द्रिय और योनीन्द्रिय को ऊपर संकोच और वीर्य को खैंचकर स्त्री गर्भाशय में स्थित करे। तत्पश्चात् थोड़ा ठहर के स्नान करे । यदि शीतकाल हो तो **प्रथम केशर, कस्तूरी, जायफल, जावित्री, छोटी इलायची डाल गर्म कर रखे हुए शीतल दूध का यथेष्ट पान करके** पश्चात् पृथक्-पृथक् शयन करें। यदि स्त्रीपुरुष को ऐसा दृढ़ निश्चय हो जाये कि गर्भ स्थिर हो गया तो उसके दूसरे दिन, और जो गर्भ रहे का दृढ़ निश्चय न हो तो एक महीने के पश्चात् रजस्वला होने के समय स्त्री रजस्वला न हो तो निश्चित जानना कि गर्भ स्थित हो गया है ।

अर्थात् दूसरे दिन वा दूसरे महीने के आरम्भ में निम्नलिखित मन्त्रों से आहुति देवें[१]—

ऋतु-समय में पूर्वोक्त रीति से गर्भाधान क्रिया करें तो अत्युत्तम सन्तान होवे। जैसे सब पदार्थों को उत्कृष्ट करने की विद्या है, वैसे सन्तान को उत्कृष्ट करने की यही विद्या है । इस पर मनुष्य लोग बहुत ध्यान देवें । क्योंकि इस के न होने से कुल की हानि, नीचता, और होने से कुल की वृद्धि और उत्तमता अवश्य होती है ।

१. यदि दो ऋतुकाल व्यर्थ जायें अर्थात् दो वार दो महीनों में गर्भाधान क्रिया निष्फल हो जाय, गर्भस्थिति न होवे तो तीसरे महीने में ऋतुकाल समय जब आवे, तब **पुष्यनक्षत्रयुक्त ऋतुकाल दिवस में प्रथम प्रातःकाल उपस्थित होवे, तब प्रथम प्रसूता गाय का दही दो मासा और यव के दाणों को सेक के पीसके दो मासा लेके इन दोनों को एकत्र करके, पत्नी के हाथ में देके** उस से पति पूछे—**''किं पिबसि'' ?** इस प्रकार तीन वार पूछे, और स्त्री भी अपने पति को **''पुंसवनम्''** इस वाक्य को तीन वार बोलके उत्तर देवे । और उस का प्राशन करे । इसी रीति से पुनः-पुनः तीन वार विधि करना। तत्पश्चात् **सङ्खाहूली व भटकटाई ओषधि को जल में महीन पीसके उस का रस कपड़े में छानके पति पत्नी के दाहिने नाक के छिद्र में सिञ्चन करे ।** और पति—

ओम् इयमोषधी त्रायमाणा सहमाना सरस्वती ।
अस्या अहं बृहत्याः पुत्रः पितुरिव नाम जग्रभम् ॥

इस मन्त्र से जगन्नियन्ता परमात्मा की प्रार्थना करके यथोक्त ऋतुदान विधि करें । यह सूत्रकार का मत है ।

यथा वातः पुष्करिणीं समिङ्गयति सर्वतः ।
एवा ते गर्भ एजतु निरैतु दशमास्यः स्वाहा ॥१॥
यथा वातो यथा वनं यथा समुद्र एजति ।
एवा त्वं दशमास्य सहावेहि जरायुणा स्वाहा ॥२॥
दश मासाञ्छशयानः कुमारो अधि मातरि ।
निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि स्वाहा ॥३॥

—ऋ० मं० ५। सू० ७८ । मं० ७-९ ॥

एजतु दशमास्यो गर्भो जरायुणा सह ।
यथायं वायुरेजति यथा समुद्रऽ एजति ।
एवायं दशमास्योऽ अस्रज्जरायुणा सह स्वाहा ॥१॥
यस्यै ते यज्ञियो गर्भो यस्यै योनिर्हिरण्ययी ।
अङ्गान्यह्रुता यस्य तं मात्रा समजीगमꣳ स्वाहा ॥२॥

—यजुः० अ० ८। मं० २८, २९ ॥

पुमाꣳसौ मित्रावरुणौ पुमाꣳसावश्विनावुभौ ।
पुमानग्निश्च वायुश्च पुमान् गर्भस्तवोदरे स्वाहा ॥१॥
पुमानग्निः पुमानिन्द्रः पुमान् देवो बृहस्पतिः ।
पुमाꣳसं पुत्रं विन्दस्व तं पुमाननु जायताꣳस्वाहा ॥२॥

—सामवेदे ॥

इन मन्त्रों से आहुति देकर, पूर्वलिखित सामान्यप्रकरण की शान्त्याहुति देके, पुनः २३ पृष्ठ में लिखे प्रमाणे पूर्णाहुति देवें । पुनः स्त्री के भोजन-छादन का सुनियम करे । कोई मादक मद्य आदि, रेचक हरीतकी आदि, क्षार अतिलवणादि, अत्यम्ल अर्थात् अधिक खटाई, रूक्ष चणे आदि, तीक्ष्ण अधिक लालमिर्ची आदि स्त्री कभी न खावे । किन्तु घृत, दुग्ध, मिष्ट, सोमलता अर्थात् गुडूच्यादि ओषधि, चावल, मिष्ट दधि, गेहूं, उर्द, मूंग, तूअर आदि अन्न, और पुष्टिकारक शाक खावें। उस में ऋतु-ऋतु के मसाले—गर्मी में ठण्डे सफेद इलायची आदि, और सर्दी में केशर कस्तूरी आदि डालकर खाया करें । युक्ताहार विहार सदा किया करें । दूध में सुंठी और ब्राह्मी ओषधि का सेवन स्त्री विशेष किया करे, जिस से सन्तान अतिबुद्धिमान् रोगरहित शुभ गुण कर्म स्वभाववाला होवे ॥

॥ इति गर्भाधानविधिः समाप्तः ॥